पुलिस निरीक्षक द्वारा राज्य

बनाम

टी. वेंकटेश मूर्ति

10 सितंबर, 2004

[न्यायाधिपति अरिजीत पासायत और न्यायाधिपति सी. के. ठक्कर]

भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम, 1988-धारा 19 (3) और (4)-कर्नाटक बिजली बोर्ड कर्मचारी (वर्गीकरण, अनुशासनात्मक नियंत्रण और अपील) विनियम, 1987-एक लोक सेवक के खिलाफ मुकदमा चलाने की मंजूरी-आरोप तय किए गए और साक्ष्य दर्ज किए गए-विचारण न्यायालय द्वारा आरोपमुक्त करना अभियुक्त ने पाया कि दी गई मंजूरी अपर्याप्त थी - उच्च न्यायालय ने उसी अपील को बरकरार रखा, माना: अभियोजन की मंजूरी में केवल चूक, त्रुटि या अनियमितता प्रभावित नहीं कर सकती कार्यवाही की वैधता तब तक है जब तक कि अदालत इस बात से संतुष्ट न हो जाए कि इसके परिणामस्वरूप न्याय विफल हुआ - यही तर्क अपीलीय और पुनरीक्षण न्यायालयों पर भी लागू होता है - इसके अलावा, न्याय की विफलता के बारे में निर्णय लेने में जल्द से जल्द मंजूरी के मुद्दे को उठाने की आवश्यकता को ध्यान में रखना होगा।

शब्द और वाक्यांश-'न्याय की विफलता'-भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 19 और दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 462 और 465 के संदर्भ में अर्थ।

प्रतिवादी-अभियुक्त, एक लोक सेवक, पर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम 1988 की धारा 7, 13(1)(डी) और 13(2) के तहत अपराध के लिए मुकदमा चलाया जा रहा था। आरोप तय किए जाने और साक्ष्य दर्ज किए जाने के बाद, उच्च न्यायालय के पहले के फैसलों के मद्देनजर, अभियोजन पक्ष ने एक आवेदन दायर कर प्रार्थना की कि अभियोजन की मंजूरी से संबंधित प्रश्न पर पहले फैसला सुनाया जाए। निर्विवाद रूप से मंजूरी दे दी गई। हालाँकि, ट्रायल कोर्ट ने कर्नाटक बिजली बोर्ड कर्मचारी (वर्गीकरण, अनुशासनात्मक नियंत्रण और अपील) विनियम, 1987 का हवाला दिया और माना कि चूंकि मंजूरी प्रतिवादी पर मुकदमा चलाने के लिए पर्याप्त नहीं थी, इसलिए वह आरोपमुक्त करने का हकदार था। उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण पर ट्रायल कोर्ट के फैसले को बरकरार रखा। इसलिए राज्य द्वारा वर्तमान अपील की गई।

अपीलकर्ता ने तर्क दिया कि भले ही यह मान लिया गया हो कि मंजूरी दोषपूर्ण थी, प्रतिवादी बर्खास्तगी का हकदार नहीं था क्योंकि यह दिखाना आवश्यक था कि इसके कारण कोई पूर्वाग्रह या न्याय की विफलता कैसे हुई। आगे यह भी कहा गया कि उच्च न्यायालय का आदेश बचाव योग्य नहीं था क्योंकि यह गैर-तर्कसंगत था।

प्रतिवादी ने तर्क दिया कि अभियोजन के लिए मंजूरी अनिवार्य है और इसके अभाव में कार्यवाही जारी नहीं रखी जा सकती।

न्यायालय ने अपील को आंशिक रूप से स्वीकार करते हुए, माना:

1. न तो विचारण न्यायालय और न ही उच्च न्यायालय ने 'न्याय की विफलता' से संबंधित भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 19 की उप-धारा 3 की आवश्यकता को ध्यान में रखा है। केवल इसलिए कि मंजूरी के मामले में कोई चूक, त्रुटि या अनियमितता है, जो कार्यवाही की वैधता को प्रभावित नहीं करती है, जब तक कि अदालत इस संतुष्टि को दर्ज न कर ले कि ऐसी त्रुटि, चूक या अनियमितता के परिणामस्वरूप न्याय विफल हो गया है। यही तर्क अपीलीय या पुनरीक्षण न्यायालय पर भी लागू होता है। इस मुद्दे को शुरुआती चरण में उठाने के बारे में उप-धारा (4) की आवश्यकता पर भी विचार नहीं किया गया है। [285-जी, एच]

2.1. 'न्याय की विफलता' की अभिव्यक्ति बहुत ही लचीली या आसान अभिव्यक्ति है, जिसे किसी मामले की किसी भी स्थिति में फिट किया जा सकता है। अभिव्यक्ति 'न्याय की विफलता', कभी-कभी, व्युत्पत्ति संबंधी गिरगिट के रूप में प्रकट होती है। आपराधिक अदालत, विशेष रूप से वरिष्ठ अदालत को यह सुनिश्चित करने के लिए बारीकी से जांच करनी चाहिए कि क्या वास्तव में न्याय की विफलता थी या यह केवल एक दिखावा है। [284-एफ]

शमनसाहब एम. मुलतानी बनाम कर्नाटक राज्य, [2001] 2 एस. सी. सी. 577, पर निर्भर था।

एम. पी. राज्य बनाम भुराजी और अन्य , [2001] 7 एस. सी. सी. 679, संदर्भित।

टाउन इन्वेस्टमेंट्स लिमिटेड बनाम पर्यावरण विभाग, [1977] 1 ऑल ई. आर. 813: (1978) ए. सी. 359, संदर्भित।

2.2. दुर्भाग्य से उच्च न्यायालय ने व्यावहारिक रूप से गैर-तर्कसंगत आदेश द्वारा, विचारण न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश की पुष्टि की। इसलिए आदेश बचाव योग्य नहीं हैं और खारिज किए जाते हैं। [285-एच; 286-ए]

3. विचारण न्यायलासे यह अपेक्षा करना उचित होगा कि वह धारा 19 की उपधारा (3) के खंड (बी) और उपधारा 4 के संदर्भ में निष्कर्षों को अभिलिखित करे। (286-ए)

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार : आपराधिक अपील संख्या 997/2004

2001 के सीआरएल आरपी संख्या 998 में कर्नाटक उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश दिनांक 14.11.2002 से।

अपीलार्थी की ओर से संजय आर. हेगड़े

प्रतिवादी की ओर से जी. वी. चंद्रशेखर और पी. पी. सिंह।

न्यायालय का निर्णय इनके द्वारा दिया गया था

न्यायाधिपति अरिजीत पासायत :

अनुमति दे दी गई।

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम 1988 (संक्षेप में 'अधिनियम') की धारा 19 का दायरा और सीमा इस अपील में विचार के लिए आता है। कर्नाटक राज्य ने कर्नाटक उच्च न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए फैसले की वैधता पर सवाल उठाया है। उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित रिहाई के आदेश को बरकरार रखा। उक्त आदेश द्वारा प्रतिवादी-अभियुक्त को आपराधिक मुकदमे से मुक्त कर दिया गया।

अपील के निपटान के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि तथ्य संक्षेप में इस प्रकार हैं:

प्रतिवादी (इसके बाद संदर्भित) के खिलाफ अधिनियम की धारा 13(2) के साथ पठित धारा 7,13 (1) (डी) के तहत संबंधित अपराधों के कमीशन के लिए 'अभियुक्त' के रूप में) आरोप पत्र दायर किया गया था। उपरोक्त प्रावधानों के तहत विचारण न्यायालय द्वारा आरोप तय किए गए थे। गवाहों की गवाही भी दर्ज हो चुकी थी। उस स्तर पर सरकारी वकील ने एक आवेदन दायर किया जिसमें कहा गया कि उच्च न्यायालय के कुछ पहले के फैसलों के मद्देनजर, अभियोजन की मंजूरी को वैध बनाने से संबंधित प्रश्न पर पहले फैसला सुनाया जाना था। आरोपी को इस पर कोई आपत्ति नहीं थी। निर्विवाद रूप से, अधीक्षक द्वारा मंजूरी दे दी गई थी।

कर्नाटक विद्युत बोर्ड के इंजीनियर (इसके बाद 'बोर्ड' के रूप में संदर्भित)। ट्रायल कोर्ट ने कर्नाटक बिजली बोर्ड कर्मचारी (वर्गीकरण, अनुशासनात्मक नियंत्रण और अपील) विनियम, 1987 (संक्षेप में 'विनियम') का उल्लेख किया और माना कि अधीक्षण अभियंता द्वारा दी गई मंजूरी आरोपी पर मुकदमा चलाने के लिए पर्याप्त नहीं थी। नतीजतन यह माना गया कि अभियुक्त अवैध मंजूरी के अनुदान के लिए कुछ समय के लिए आरोपमुक्त करने का हकदार था। हालाँकि, अभियोजन पक्ष को नई मंजूरी प्राप्त करने और नया आरोप पत्र दायर करने की स्वतंत्रता दी गई थी। इस आदेश की कर्नाटक उच्च न्यायालय के समक्ष इस आधार पर आलोचना की गई थी कि भले ही यह मान लिया जाए कि मंजूरी दोषपूर्ण थी, लेकिन इससे आरोपी को आरोपमुक्त करने के आदेश का अधिकार नहीं मिल जाता। आक्षेपित आदेश द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में 'संहिता') की धारा 401 के साथ पठित धारा 397 के तहत दायर पुनरीक्षण आवेदन को खारिज कर दिया गया।

अपील के समर्थन में राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया भले ही तर्कों के लिए यह स्वीकार कर लिया जाए कि मंजूरी दोषपूर्ण थी, जो आरोपी को आरोपमुक्त करने के आदेश का हकदार नहीं बनाती। अभियुक्त को यह दिखाना आवश्यक था कि कैसे कोई पूर्वाग्रह उत्पन्न हुआ या न्याय की विफलता हुई। यह भी बताया गया कि उच्च न्यायालय का आदेश

व्यावहारिक रूप से गैर-तर्कसंगत है और विचारण न्यायालय के दृष्टिकोण को स्वीकार करने के लिए कोई कारण नहीं बताया गया है।

इसके विपरीत, प्रतिवादी अभियुक्त के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि अभियोजन के लिए मंजूरी अनिवार्य थी। वैध मंजूरी के अभाव में कार्यवाही जारी नहीं रखी जा सकती थी और इसलिए ट्रायल कोर्ट अपने निष्कर्ष में सही था।

धारा 19 अधिनियम के अध्याय 5 का एक हिस्सा है जो "अभियोजन के लिए मंजूरी और अन्य विविध प्रावधानों" से संबंधित है। इस अनुभाग में चार उप-खंड हैं जो इस प्रकार हैं:

"19. अभियोजन के लिए पूर्व मंजूरी आवश्यक है।- (1) कोई भी अदालत धारा 7,10,11,13 और 15 के तहत दंडनीय किसी अपराध का संज्ञान नहीं लेगी, जो कथित तौर पर किसी लोक सेवक द्वारा किया गया हो, पिछली मंजूरी के अलावा,

(ए) ऐसे व्यक्ति के मामले में जो संघ के मामलों के संबंध में कार्यरत है और केंद्र सरकार द्वारा या उसकी मंजूरी के अलावा अपने कार्यालय से हटाया नहीं जा सकता है;

(बी) ऐसे व्यक्ति के मामले में जो किसी राज्य के मामलों के संबंध में कार्यरत है और राज्य सरकार द्वारा या उसकी मंजूरी के अलावा अपने पद से हटाया नहीं जा सकता है;

(सी) किसी अन्य व्यक्ति के मामले में, उसे उसके कार्यालय से हटाने के लिए सक्षम प्राधिकारी।

(2) जहां किसी भी कारण से कोई संदेह उत्पन्न होता है कि क्या उप-धारा (1) के तहत आवश्यक पिछली मंजूरी केंद्र सरकार या राज्य सरकार या किसी अन्य प्राधिकरण द्वारा दी जानी चाहिए, ऐसी मंजूरी उस सरकार या प्राधिकरण द्वारा दी जाएगी जो उस समय लोक सेवक को उसके कार्यालय से हटाने में सक्षम होता जब अपराध किए जाने का आरोप लगाया गया हो।

(3) आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में किसी बात के होते हुए भी,-

(ए) किसी विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित किसी भी निष्कर्ष, सजा या आदेश को उपधारा (1) के तहत आवश्यक मंजूरी की अनुपस्थिति, या किसी त्रुटि, चूक या अनियमितता के आधार पर अपील, पुष्टि या पुनरीक्षण में अदालत द्वारा उलट या परिवर्तित नहीं किया जाएगा। जब तक कि उस अदालत की राय में, वास्तव में न्याय की विफलता उत्पन्न न हुई हो;

(बी) कोई भी अदालत प्राधिकरण द्वारा दी गई मंजूरी में किसी त्रुटि, चूक या अनियमितता के आधार पर इस अधिनियम के तहत कार्यवाही पर रोक नहीं लगाएगी, जब तक कि वह संतुष्ट न हो कि ऐसी त्रुटि, चूक या अनियमितता के परिणामस्वरूप न्याय की विफलता हुई है;

(सी) कोई भी अदालत किसी अन्य आधार पर इस अधिनियम के तहत कार्यवाही पर रोक नहीं लगाएगी और कोई भी अदालत किसी भी जांच, परीक्षण, अपील या अन्य कार्यवाही में पारित किसी भी अंतरिम आदेश के संबंध में पुनरीक्षण की शक्तियों का प्रयोग नहीं करेगी।

4. उप-धारा (3) के तहत यह निर्धारित करने में कि क्या ऐसी मंजूरी की अनुपस्थिति या किसी त्रुटि, चूक या अनियमितता के कारण न्याय में विफलता हुई है या इसके परिणामस्वरूप अदालत को इस तथ्य पर ध्यान देना होगा कि क्या आपत्ति हो सकती थी और होनी चाहिए थी कार्यवाही के किसी भी पहले चरण में उठाया गया।

स्पष्टीकरण - इस धारा के प्रयोजनों के लिए, -

(ए) त्रुटि में मंजूरी देने के लिए प्राधिकारी की योग्यता शामिल है;

(बी) अभियोजन के लिए आवश्यक मंजूरी में किसी भी आवश्यकता का संदर्भ शामिल है कि अभियोजन एक निर्दिष्ट प्राधिकारी के अनुरोध पर या एक निर्दिष्ट व्यक्ति की मंजूरी या समान प्रकृति की किसी भी आवश्यकता के साथ होगा।

उपधारा (3) और (4) को संयुक्त रूप से पढ़ने से स्थिति स्पष्ट हो जाती है संहिता में किसी भी बात के होते हुए भी किसी विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित किसी भी निष्कर्ष, सजा और आदेश को अदालत द्वारा अपील, पुष्टि या पुनरीक्षण में मंजूरी में किसी त्रुटि, चूक या अनियमितता के अभाव

के आधार पर उलट या परिवर्तित नहीं किया जाएगा। उप-धारा (1) के तहत आवश्यक है जब तक कि उस अदालत की राय में वास्तव में न्याय की विफलता न हुई हो।

उपधारा (3) का खंड (बी) भी प्रासंगिक है। यह दर्शाता है कि कोई भी अदालत प्राधिकरण द्वारा दी गई मंजूरी में किसी त्रुटि, चूक या अनियमितता के आधार पर अधिनियम के तहत कार्यवाही पर रोक नहीं लगाएगी, जब तक कि वह संतुष्ट न हो कि ऐसी त्रुटि, चूक या अनियमितता के परिणामस्वरूप न्याय में विफलता हुई है।

उप-धारा (4) में कहा गया है कि उप-धारा (3) के तहत यह निर्धारित करने में कि क्या मंजूरी में अनुपस्थिति, या किसी त्रुटि, चूक या अनियमितता के कारण न्याय में विफलता हुई है या नहीं, न्यायालय को इस तथ्य पर ध्यान देना होगा कि क्या आपत्ति कार्यवाही के किसी भी पहले चरण में उठाई जानी चाहिए थी।

अनुभाग से जुड़ा स्पष्टीकरण भी महत्व रखता है। यह प्रावधान करता है कि धारा 19 के प्रयोजन के लिए, त्रुटि में मंजूरी देने के लिए प्राधिकारी की योग्यता शामिल है।

अभिव्यक्ति "न्याय की विफलता" बहुत ही लचीली या आसान अभिव्यक्ति है जिसे किसी मामले की किसी भी स्थिति में फिट किया जा सकता है। अभिव्यक्ति "न्याय की विफलता" कभी-कभी, व्युत्पत्ति संबंधी गिरगिट के रूप में प्रकट होती है (उपमा लॉर्ड डिप्लॉकिन टाउन

इन्वेस्टमेंट्स लिमिटेड बनाम पर्यावरण विभाग, [1977] 1 सभी ई.आर. 813: 1978 एसी 359 से उधार ली गई है। आपराधिक न्यायालय, विशेष रूप से श्रेष्ठ न्यायालय यह सुनिश्चित करने के लिए बारीकी से जांच करनी चाहिए कि क्या वास्तव में न्याय की विफलता थी या यह केवल एक दिखावा है। [शमनसाहेब एम मुल्तानी बनाम कर्नाटक राज्य, [2001] 2 एससीसी 577 देखें]। धाराओं पर ध्यान देना भी प्रासंगिक होगा संहिता के 462 और 465, जो इस प्रकार हैं:

"462. गलत स्थान पर कार्यवाही:

किसी भी आपराधिक न्यायालय के किसी भी निष्कर्ष, सजा या आदेश को केवल इस आधार पर रद्द नहीं किया जाएगा कि जांच, परीक्षण या अन्य कार्यवाही जिसके दौरान वह पहुंचा या पारित किया गया था, गलत सत्र प्रभाग, जिला उपखंड या अन्य स्थानीय क्षेत्र में हुई थी। जब तक ऐसा प्रतीत न हो कि ऐसी त्रुटि वास्तव में न्याय की विफलता का कारण बनी है।

465. त्रुटि, चूक या अनियमितता के कारण पलटने पर निष्कर्ष या सजा:

(1) यहां पहले से निहित प्रावधानों के अधीन, सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय द्वारा पारित कोई भी निष्कर्ष, सजा या आदेश शिकायत में किसी त्रुटि, चूक या अनियमितता के कारण अपील की पुष्टि या संशोधन के न्यायालय द्वारा उलट या परिवर्तित नहीं किया जाएगा। समन, वारंट,

उद्घोषणा, आदेश, निर्णय या परीक्षण से पहले या उसके दौरान या इस संहिता के तहत किसी भी जांच या अन्य कार्यवाही में, या अभियोजन के लिए किसी भी मंजूरी में कोई त्रुटि, या अनियमितता, जब तक कि उस न्यायालय की राय में विफलता न हो इससे वास्तव में न्याय का अवसर प्राप्त हुआ है।

(2) यह निर्धारित करने में कि क्या इस संहिता के तहत किसी कार्यवाही में कोई त्रुटि, चूक या अनियमितता, या अभियोजन के लिए किसी मंजूरी में कोई त्रुटि, या अनियमितता के कारण न्याय में विफलता हुई है, न्यायालय इस तथ्य को ध्यान में रखेगा कि क्या आपत्ति हो सकती है और कार्यवाही के पहले चरण में उठाया जाना चाहिए था।"

एमपी राज्य बनाम भूराजी और अन्य में [2001] 7 एससीसी 679 सच है "न्याय की विफलता" अभिव्यक्ति के सार पर प्रकाश डाला गया। संहिता की धारा 465 वास्तव में "त्रुटि, चूक या अनियमितता के कारण प्रतिवर्ती होने पर निष्कर्ष या सजा" से संबंधित है।

इस मामले में ऐसा प्रतीत होता है कि न तो विचारण न्यायालय और न ही उच्च न्यायालय ने "न्याय की विफलता" से संबंधित प्रश्न से संबंधित उप-धारा (3) की आवश्यकताओं को ध्यान में रखा है। केवल इसलिए कि मंजूरी देने के मामले में कोई चूक, त्रुटि या अनियमितता है, जो कार्यवाही की वैधता को प्रभावित नहीं करती है, जब तक कि अदालत इस संतुष्टि को दर्ज न कर ले कि ऐसी त्रुटि, चूक या अनियमितता के परिणामस्वरूप

न्याय में विफलता हुई है। यही तर्क अपीलीय या पुनरीक्षण न्यायालय पर भी लागू होता है। प्रारंभिक चरण में इस मुद्दे को उठाने के बारे में उपधारा (4) की आवश्यकता पर भी विचार नहीं किया गया है। दुर्भाग्य से उच्च न्यायालय ने व्यावहारिक रूप से गैर-तर्कसंगत आदेश द्वारा, विद्वान परीक्षण न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश की पुष्टि की। इसलिए, आदेश बचाव योग्य नहीं हैं। हमने उक्त आदेशों को रद्द कर दिया है। विचारण न्यायालय से धारा 19 की उपधारा (3) के खंड (बी) और उप-धारा (4) के संदर्भ में निष्कर्षों को अभिखित करने की अपेक्षा करना उचित होगा।

उपरोक्त सीमा तक अपील स्वीकार की जाती है।

वी एस एस

आंशिक अपील स्वीकार की गई।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक अधिवक्ता निशा पालीवाल द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।